Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. IV, Issue No. VIII, October-2012, ISSN 2230-7540

AN INTERNATIONALLY INDEXED PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL

साहित्य की प्रगतिशील परम्परा और रामविलास शर्मा

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. IV, Issue No. VIII, October-2012, ISSN 2230-7540

साहित्य की प्रगतिशील परम्परा और रामविलास शर्मा

Anand Kumar Yadav*

Research Scholar, Mahatma Gandhi Chitrakoot Gramodaya Vishwavidhyalya, Chitrakoot, Satna, Madhya Pradesh

सार – *रामविलास शर्मा के पहले आलोचना की कई परम्पराएँ चल रही थीं। एक ही समय में कई परम्पराओं या विचारधाराओं का साथ-साथ चलना अस्वाभाविक नहीं है। इतिहास के काल विशेष में कई प्रकार की विचारधाराएँ एक दूसरे को काटती- पीटती टकराती चलती रहती हैं। नये आलोचक को उनमें से ऐसी परम्परा अन्वेषित करनी पड़ती है जो साहित्य और समाज को नयी दिशा देने में समर्थ हो।*

---------------------------------- x ----------------------------------

रामविलास शर्मा विचारों से मार्क्सवादी हैं इसलिए स्वाभाविक है कि वे ऐसी परम्परा की खोज में लगते जो प्रगतिशील साहित्य के निर्माण में सहायक हो सकती थी। उन्होंने स्वयं कहा है-"साहित्य की परम्परा के ज्ञान से ही प्रगतिशील आलोचना का विकास होता है। प्रगतिशील आलोचना के ज्ञान से ही साहित्य की धारा मोड़ी जा सकती है तथा नये प्रगतिशील साहित्य का निर्माण किया जा सकता है।"[1] जाहिर है कि वे हिन्दी-आलोचना की परम्परा में प्रगतिशील तत्वों को खोजते हैं। प्रगतिशील तत्वों को खोजने का अभिप्राय साहित्य की धारा को मोड़ना और नये प्रगतिशील साहित्य के निर्माण को दिशा देना है। रामविलास शर्मा की आलोचनात्मक कृतियों के अध्ययन से पता चलता है कि उन्होंने सामान्यतः उन्हीं व्यक्तियों का व्यापक अध्ययन किया है जो हिन्दी की प्रगतिशील विचारधारा को आगे बढ़ाते हैं जैसे-भारतेन्दु, प्रेमचन्द, निराला आदि। इसके साथ ही अपनी आलोचना के लिए उन्होंने उन आलोचकों को अपना पथ-प्रदर्शक माना है जो शास्त्रीय और प्रतिक्रियावादी आलोचना के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे। उदाहरण के लिए बालकृष्ण भट्ट, महावीरप्रसाद द्विवेदी और रामचन्द्र शुक्ल का उल्लेख किया जा सकता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि इनके अतिरिक्त अन्य सभी आलोचक प्रगतिशील नहीं थे, किन्तु शर्मा ने अपनी मानसिकता के अनुरूप बालकृष्ण भट्ट, महावीरप्रसाद द्विवेदी और रामचन्द्र शुक्ल को ही चुना। इतिहास के एक खास काल-खण्ड में अतीत की कुछ रीति-नीति, आचार-विचार, साहित्य-संगीत आदि की पद्धति परिवर्तन के साथ चलती रहती है। इसी को परम्परा कहते हैं। राबर्ट वाहमान के अनुसार यही अतीत की वर्तमानता है। अतीत के प्रगतिशील तत्वों के साथ प्रतिक्रियावादी तत्व भी वर्तमान में अपने ढंग से जीवित रहते हैं। लेकिन कालान्तर में प्रतिक्रियावादी तत्व मर जाते हैं और प्रगतिशील तत्व ऐसी विरासत के रूप में सुरक्षित रहते हैं जो भविष्य को नया अर्थ देते हैं।

परम्परा को लेकर दो तरह की धारणायें आज भी प्रचलित हैं। एक धारणा परम्परा के अंधे पूजकों की है तो दूसरी परम्परा के मूर्तिभंजकों की। अंधापन दोनो ओर है। मार्क्सवादियों ने परम्परा पर रचनात्मक ढंग से पुनर्विचार किया और वे कुछ तर्क संगत रचनात्मक निष्कर्षों तक पहुँचते हैं। मार्क्सवादियों का भी एक दल रहा है और शायद अब भी है जो परम्परा का बुत तोड़ने में ही मार्क्सवाद की ताकत समझते हैं। रामविलास शर्मा को परम्परा की रक्षा करने और उनके प्रगतिशील तत्वों को वर्तमान से जोड़ने में दोनों अंधों से जूझना पड़ता है। 'आचार्य शुक्ल और हिन्दी आलोचना' (तृतीय संस्करण) की भूमिका में उन्होंने लिखा है-"समाजवादी लेखकों का एक दल संकीर्णता-विरोध के नाम पर विचारधारात्मक संघर्ष से तटस्थ रहता है और वस्तुवाद के विरुद्ध भाववाद का समर्थन करता है। दूसरा दल संशोधनवाद से संघर्ष के नाम पर हिन्दी साहित्य की समस्त प्रगतिशील परम्परा का तिरस्कार करता है, वह मार्क्सवाद के मौलिक मानवतावादी रूप को पहचानने में असमर्थ है। एक तीसरा दल ऐसे लोगों का भी है जो जड़ता के विरोध के नाम पर यूरोप या अमेरिका की पतनशील प्रवृत्तियों का अनुसरण करता है।" इस उद्धरण पर टिप्पणी करते हुए डॉ. मैनेजर पाण्डे लिखते हैं-"इन तीनों दलों और एक गुट की चर्चा से लगता है कि हिन्दी में बहुमत गलत समाजवादियों का है, सही समाजवादी अल्पमत में हैं। ऐसी स्थिति में परम्परा की रक्षा कैसे हो सकती है? संकीर्णता, जड़ता और संशोधनवाद के नाम पर विचारधारात्मक संघर्ष से तटस्थता, पश्चिम की पतनशील प्रवृत्तियों का अनुकरण और समस्त प्रगतिशील परम्परा का तिरस्कार गलत है, इन बातों की आलोचना करना सही है। लेकिन क्या देश की राजनीति और हिन्दी की मार्क्सवादी आलोचना में बड़े पैमाने पर संशोधनवाद, संकीर्णवाद और जड़ता के विरुद्ध संघर्ष नहीं होना चाहिए? संशोधनवाद के विरुद्ध संघर्ष, राजनीति और साहित्य में

www.ignited.in

वर्ग-सहयोग की नीति के विरुद्ध संघर्ष है, मार्क्सवाद के क्रान्तिकारी रूप को धूमिल करने वाली मानवतावादी व्याख्या के विरुद्ध संघर्ष है। इतिहास और परम्परा के क्रान्तिकारी पक्षों का महत्व स्थापित करने के लिए संघर्ष, संशोधनवाद के विरुद्ध व्यापक संघर्ष का अंग है। इतिहास और परम्परा के क्रान्तिकारी पक्षों की उपेक्षा करना संशोधनवाद का लक्षण है। वर्तमान में संकीर्णतावाद और जड़ता के खिलाफ संघर्ष में भी परम्परा के क्रान्तिकारी पक्षों की समझ में मदद मिलती है, लेकिन अतीत के साये में वर्तमान और भविष्य की कोशिश से जड़ता के फैलने का खतरा है।''[2]

रामविलास शर्मा के उक्त उद्धरण से अल्पमत या बहुमत की बात ही नहीं उठती और न वे संशोधनवाद की खिलाफत करने से ही मना करते हैं। यह ऐसा लेबल है जिसे आप जब चाहें अपने विरोधियों पर चस्पा कर दें। मार्क्सवाद के क्रान्तिकारी पक्ष कौन-कौन से हैं जिनकी चर्चा पाण्डे के उद्धरण में चार बार की गयी है? रामविलास शर्मा 'मानवतावाद' की नहीं बल्कि मौलिक मानवतावाद की चर्चा करते हैं। यह मौलिक मानवतावाद गरीब तबके का ही पक्षधर है। प्रारम्भ में राहुल, शिवदान सिंह चैहान, रहबर, रांगेय राघव मार्क्सवाद के क्रान्तिकारी पक्ष को ही लेकर चल रहे थे। उन्होंने लिखा है-''मेरे लेखों में परम्परा की रक्षा और उसके विकास पर काफी जोर है। मैंने यह बताने की कोशिश की है कि परम्परा, रूढिवादी नहीं है। जो रूढ़ियाँ हो जाती हैं उन्हें छोड़ना बहुत जरूरी है। मैं अनुकरण पर भी जोर नहीं देता। मेरा कहना है कि प्रेमचन्द, शुक्ल और भारतेन्दु से सीख कर आगे बढ़ना चाहिए। अगर हम अपने पुराने साहित्य को नहीं सीखते तो हम इंग्लैण्ड, फ्रान्स या अमेरिका के पूँजीवादी साहित्य से प्रभावित हो जायेंगे। अक्सर होता यही है, इसको हम आधुनिकता-बोध मान लेते हैं।''[3]

परम्परा की रक्षा का अर्थ है-प्रगतिशील परम्परा की रक्षा और रूढ़ियों का विरोध। उससे शिक्षा ग्रहण करके ही हम अपनी जातीय दिशा की ओर बढ़ सकते हैं। परम्परा को छोड़ देने पर पतनशील आधुनिकता के चंगुल में फँस जाने का खतरा बना रहता है। कुछ दिनों तक हिन्दी साहित्य में अस्तित्ववाद और प्रयोगवाद के सहारे आधुनिकतावाद की लतायें खूब लहलहाती रहीं। परम्परा का अध्ययन, मनन और चिन्तन आधुनिकतावाद के रहस्यवाद और कलावाद के मायाजाल में नहीं फँसने देता। शर्मा के मूल में मुख्य समस्यायें आज के जीवन और जगत् की हैं। इन समस्याओं का हल ढूँढने के लिये भी परम्परा की जरूरत होती है। वे कहते हैं-''जो जाति प्रगतिशील होती है, अपना विकास करना चाहती है, अज्ञान और अपमान का जीवन न बिताकर संगठित रूप से आगे बढ़ना चाहती है, वही अपनी परम्परा के सही मूल्यांकन की ओर ध्यान देती है।''[4] यहाँ 'सही' शब्द का प्रयोग जानबूझ कर किया गया है क्यांेकि परम्परा का गलत मूल्यांकन करने वालों में वे लोग भी हैं जो वैज्ञानिक समाजवादी होने का दावा करते हैं।

परम्परा के मूल्यांकन के लिये जरूरी है ऐतिहासिक दृष्टि और ऐतिहासिक दृष्टि के लिये जरूरी है, ऐतिहासिक भौतिकवाद का ज्ञान। दूसरी वस्तु है वर्ग-संघर्ष, तीसरी है द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और चैथी है साहित्य के निर्माण मे प्रतिभाशाली व्यक्ति की भूमिका। वर्ग-संघर्ष के सन्दर्भ में वे वर्ग-सहयोग की चर्चा भी करते हैं। वे मानते हैं कि मनुष्य जाति का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है। पर इसके साथ वे यह भी कहते हैं- ''......पर इसके अलावा सभ्यता का इतिहास वर्ग-सहयोग का इतिहास भी है। भले ही वह सहयोग शोषक-वर्ग के लोगों को फुसलाकर, डरा-धमकाकर या दबा कर प्राप्त किया गया हो, पर है वह वर्ग-सहयोग।''[5] इस वक्तव्य पर कम लोग ध्यान देते हैं, पर है यही सही। आगे चलकर वे इसे और स्पष्ट करते हैं। पहले वह राहुल सांकृत्यायन की मान्यताओं का उल्लेख करते हैं। 'वोल्गा से गंगा' की 'प्रभा' कहानी मे राहुल जी 'रघुवंश' और 'कुमारसम्भव' को चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की प्रशस्तियाँ कहते हैं। 'सुवर्ण याथेन' में कालिदास गुप्त-सम्राटों के चाटुकार सिद्ध किये गये हैं। उनकी तुलना में बौद्ध कवि अश्वघोष को महाकवि और महापुरुष दोनों कहा गया है। वाल्मीकि को शुंग सम्राट का प्रशंसक बताया गया है। रांगेय राघव वैदिक ऋषियों के उद्‌गारों को 'आर्य-दंभ' कहते हैं। इस पर व्यंग्य करते हुए शर्मा ने ठीक ही कहा है- 'आर्य-दंभ' का खण्डन करने के लिए रांगेय राघव द्रविड़-दंभ का सहारा लेते हैं। इस प्रकार नस्ल के आधार पर इतिहास का विश्लेषण पश्चिम के पूँजीवादी चिन्तन की देन है।

भारतीय साहित्य की परम्परा के सम्बन्ध में हंसराज रहबर का दृष्टिकोण भी राहुल और रांगेय राघव से भिन्न नहीं है-''वह जीवन की यथार्थताओं से भागता है और वास्तविकताओं से मुँह मोड़कर भक्ति और उपासना की शरण में जा छिपा है। नतीजा यह हुआ कि वह निस्तेज और निष्प्राण हो गया है, रूप में भी, अर्थ में भी और हमारे साहित्य ने विचार और बुद्धि का एक प्रकार से बहिष्कार कर दिया है।''[6] प्रगतिशील लेखक संघ के कलकत्ता अधिवेशन (1938) के घोषणा पत्र में भी इसे दोहराया गया। अतः रामविलास शर्मा के लिए आवश्यक हो गया कि इसके प्रतिपक्ष में सही मार्क्सवादी दृष्टि से भक्तिकाल का मूल्यांकन करते। ऐसा करने के साथ-साथ तुलसी पर भी लेख लिखने पड़े, आक्रमण भी तुलसी पर ही ज्यादा किया गया था।

'सन्त' शब्द का प्रयोग उन्होंने व्यापक अर्थ में किया है। सामान्यतः हिन्दी साहित्यकारों ने निर्गुण भक्तों को ही सन्त कहा है पर रामविलास निर्गुण-सगुण भक्तों तथा सूफियों को भी

सन्त कहते हैं। उन्हीं के शब्दों में- "सन्तों में स्त्री और पुरुष, सन्यासी और गृहस्थ, हिन्दू और मुसलमान, सगुणवादी और निर्गुणवादी दोनों हैं।"[7] शर्मा ने सन्तों को सर्वप्रथम सामाजिक-आर्थिक परिपे्रक्ष्य में रखकर देखा। इसके पहले या तो पराजित जाति की उस असहायता का उल्लेख किया जाता था जिसके कारण भगवान की शरण में जाने के लिए भक्तों को बाध्य होना पड़ा या फिर उन्हें एक लम्बी धार्मिक श्रृंखला बौद्ध, इस्लाम, हिन्दू से बाँध कर उसी अंश का सिद्ध किया जाता रहा है। अथवा रीतिबद्ध तरीके से राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक स्थितियों का ब्यौरा देकर उनके कच्चे धागे से भक्तिकाल को बाँध दिया जाता रहा है। फिर तुलसीदास की दासभक्ति, शैव-वैष्णव के समन्वय, दार्शनिकता आदि को खोज लिया जाता है। चूँकि डॉ. शर्मा के पास एक सन्तुलित ऐतिहासिक दृष्टि है इसलिए समूचे भक्ति-साहित्य को उन्होंने नये ढंग से देखा है। यह तर्कसंगत होने के साथ-साथ ताजगी से परिपूर्ण है।

रामविलास शर्मा का मत है कि सन्त साहित्य भारतीय जीवन की अपनी परिस्थितियों से पैदा हुआ था। सामन्ती शक्ति के ह्रास से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। कुछ लोगों के विचार से अंग्रेजों के जमने से पूर्व सामन्ती व्यवस्था काफी मजबूत थी। रामविलास इस मत के समर्थक नहीं हैं, वह इस धारणा को इतिहास-विरूद्ध मानते हैं। वे लिखते हैं-"15वीं, 16वीं एवं 17वीं सदी में यहाँ पर बड़ी-बड़ी व्यापार की मंडियाँ कायम होती हैं। पचीसों नगर व्यापार और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के केन्द्र बन कर उठ खडे होते हैं। लोहे और कपास का सामान काफी बडे मात्रा में तैयार किया जाता है। सैकड़ों वर्षों बाद सामाजिक जीवन की बागडोर सामन्तों के हाथ में नहीं रहती है लेकिन बहुत से सामन्त भी अपनी शक्ति के लिए सामन्तों का सहारा लेते हैं। गोला-बारूद का प्रयोग, एक-से सिक्कों का काफी बड़े प्रदेशों में चलना, सड़कों और नहरों का बनना, किसानों से सीधे राज्य-कर लेने की व्यवस्था आदि ऐसी बातें थीं जिनसे गाँवों का अलगाव कम हुआ और सामन्ती शक्ति कमजोर हुई।"[8] सामन्ती शक्ति किसी बाहरी कारणों से नहीं बल्कि आन्तरिक कारणों से शिथिल हो रही थी। व्यापार ने उसकी जड़ता को तोड़कर गतिशील बनाया। "किसानों, मजदूरों, जुलाहों ने इसमें मदद की। पंडित-पुरोहित धर्म के नाम पर सामन्ती जड़ता को मजबूत कर रहे थे। भक्त कवियों ने इनके विरोध द्वारा इसे तोड़ने में सहायता पहुँचाई। सूर और तुलसी, प्रेम-मार्गी सूफियों ने लाखों मनुष्यों को उनके ग्रामीण और जनपदीय अन्धविश्वासों से अलग नये सूत्र में बाँधना शुरू किया। यह कार्य व्यापार की बढ़ती और यातायात की अधिक सुविधा से सम्भव हुआ।"[9] व्यापार का बढ़ता प्रभाव बोलियों पर भी पड़ा। सन्तों द्वारा प्रयुक्त भाषा पर विचार करने के लिये इतना पर्याप्त नहीं है कि तुलसी और गंग कवियों के सरदार हैं जिनकी रचनाओं में अनेक भाषाओं और बोलियों का समीकरण दिखाई देता है। न यही पर्याप्त है कि वे इधर-उधर घूमते थे इसलिए उनकी भाषा में अनेक बोलियों के शब्द मिलते हैं। व्यापारियों के जहाँ-तहाँ आने-जाने से ब्रजी लोकप्रिय भाषा बन चुकी थी, उसमें मैथिली, भोजपुरी, बुन्देलखंडी आदि शब्द घुल-मिल गये। शर्मा सन्तों के लोकधर्म को सामन्ती व्यवस्था कमजोर करने से जोड़ते हैं। वे उनकी असंगतियों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि सन्त कवियों का एक सुसंगत दार्शनिक दृष्टिकोण नहीं है। वर्गयुक्त समाज में शासक वर्ग के प्रभाव के कारण वे भाग्यवाद, मायावाद, जन्मान्तरवाद, संसार की असारता आदि से भी जुड़े हैं और इहलौकिकता, कर्मवाद, लौकिक जीवन के प्रति आग्रह, जनता की दुःख-वेदना तथा सौन्दर्य से संपृक्त हैं। इस असंगति को तत्कालीन सामन्ती सन्दर्भ से जोड़े बिना नहीं समझा जा सकता। डॉ. शर्मा जायसी की जनसंस्कृति का उल्लेख करते हैं। इसी को आधार मानकर बाद में जायसी की जनपदीय विशेषताएँ खोजी गईं। तुलसी ने इसी संस्कृति के आधार पर ग्राम-जीवन के अद्भुत चित्र खींचे हैं।

सन्दर्भ

1. डॉ. रामविलास शर्मा-परम्परा का मूल्यांकन, पृ.1
2. डॉ. मैनेजर पाण्डेय-साहित्य और इतिहास, पृ.195
3. इसलिए, अंक-1, पृ.32
4. डॉ. रामविलास शर्मा-महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, पृ.380
5. डॉ. रामविलास शर्मा-परम्परा का मूल्यांकन, पृ.10
6. डॉ. मैनेजर पाण्डेय-साहित्य की इतिहास दृष्टि, पृ.194
7. डॉ. रामविलास शर्मा-परम्परा का मूल्यांकन, पृ.45
8. डॉ. रामविलास शर्मा-परम्परा का मूल्यांकन, पृ.46
9. वही....., पृ.47

Corresponding Author

Anand Kumar Yadav*

Research Scholar, Mahatma Gandhi Chitrakoot Gramodaya Vishwavidhyalya, Chitrakoot, Satna, Madhya Pradesh